Reg No 177/2008-2009 ISSN: 2322–0317

PSSH PERSPECTIVE of SOCIAL SCIENCES and HUMANITIES

An International Multidisciplinary Refereed Research Journal

VOL 2, NO 2

JULY - DECEMBER 201

Biannual

Editor

Dr Hemant Kumar Singh

Assistant Professor

Economics Department

Madan Mohan Malviya PG College

Deoria (UP)

Publisher

Herambh Welfare Society

Varanasi (India)

हिन्दी साहित्य में द्विवेदीयुगीन स्वच्छन्दतावाद और छायावाद का विकास

डॉ. राजेश पाण्डेय[1]

द्विवेदी युग को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहला भाग अर्थात् पूर्वार्द्ध में पुनरुत्थान की धारा प्रवाहित होती है। जिसमें नीति, उपदेशात्मक, इतिवृतात्मक और नीरसता की प्रधानता थी, जिसकी प्रतिक्रिया से छायावाद का उदय हुआ। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– "द्वितीय उत्थान में काव्य की नूतन परंपरा का अनेक विषयस्पर्शी प्रसार अवश्य हुआ पर द्विवेदी जी के प्रभाव से एक ओर उसमें भाषा की सफाई आई, दूसरी ओर उसका स्वरूप गद्यवत्, रूखा, इतिवृत्तात्मक और अधिकतर वाह्यार्थ निरूपक हो गया। अतः इस तृतीय उत्थान में जो परिवर्तन हुआ और पीछे 'छायावाद' कहलाया, वह उसी द्वितीय उत्थान की कविता के विरुद्ध कहा जा सकता है। उसका प्रधान लक्ष्य काव्य शैली की ओर था, वस्तुविधान की ओर नहीं। अर्थभूमि या वस्तुभूमि का तो उसके भीतर बहुत संकोच हो गया। समन्वित विशाल भावनाओं को लेकर चलने की ओर ध्यान न रहा।"[1] दूसरा भाग अर्थात् उत्तरार्द्ध जिसे स्वच्छन्दतावाद कहा जा सकता है, जिसके अन्तर्गत छायावाद का विकास क्रम के रूप में हुआ, जो द्विवेदीयुगीन स्वच्छन्दतावाद के आगे की चरम परिणति है। जिसमें खड़ी बोली चरम स्तर पर स्पष्ट थी। प्रो. नामवर के अनुसार– "छायावाद, द्विवेदी–युग का ऐतिहासिक विकास है और इस प्रकार छायावाद हिन्दी साहित्य के परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।"[2] रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार– "स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा ने जीवन से लगाव की एक भूमिका तैयार की, जो आगे चलकर छायावाद में और गहरी हो जाती है।"[3] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'छायावाद' पर पाश्चात्य एवं बंगला का प्रभाव मानते हैं। उनके अनुसार– "ईसाई संतो के छायाभास (फैंटासमाटा) तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद (सिंबालिज्म) के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगला में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगी थी। यह 'वाद' क्या प्रकट हुआ, एक बने बनाए रास्ते का दरवाजा सा खुल पड़ा और हिंदी के कुछ नए कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। यह अपना क्रमशः बनाया हुआ रास्ता नहीं था। इनका दूसरे साहित्य क्षेत्र में प्रकट होना, कई कवियों का इस पर एक साथ चल पड़ना और कुछ दिनों तक इसके भीतर अंग्रेजी

[1] श्यामतारा स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मिर्जामुराद, वाराणसी

और बंगला की पदावली का जगह–जगह, ज्यों का त्यों, अनुवाद रखा जाना, ये बाते मार्ग की स्वतंत्र उद्भावना नहीं सूचित करतीं।''[4] यह तो पहला पक्ष हुआ और दूसरे पक्ष को वे छायावाद को रहस्यवाद के रूप में मानते हैं। काव्य वस्तु को गौण तथा शिल्प तत्त्व को प्रमुख मानते हैं। आ. रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार– "'छायावाद' शब्द का प्रयोग दो अर्थो में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्यवस्तु से होता है अर्थात जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद से अंतर्भूत रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने संतों या साधको की उसी वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधिदशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थी। इस रूपात्मक आभास को यूरोप में 'छाया' (फैंटसमाटा) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्मसमाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे–धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रवींद्र बाबू की धूम मचने पर हिंदी के साहित्य क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।"[5] पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विदेशी प्रभाव तथा बंगला से आये हुए छायावाद का खंडन करते हैं और वे छायावाद को स्वदेशी मानते हैं। उनके अनुसार "छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, यद्यपि उसमें नवीन शिक्षा के परिणाम होने के चिन्ह स्पष्ट हैं तथापि वह केवल पाश्चात्य प्रभाव नहीं था, कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा–शैली में अपने को अभिव्यक्त किया है"।[6] जयशंकर प्रसाद छायावाद को स्वानुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार– "कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश–विदेश की सुंदरी के वाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी, तब हिन्दी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। रीतिकालीन प्रचलित परंपरा से, जिसमें वाह्य वर्णन की प्रधानता थी। इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई। ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे। .....मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता होती है, वैसी ही कांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है। इस लावण्य को संस्कृत–साहित्य में छाया और विच्छिति के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया था।''[7]

छायावाद के श्रेष्ठ आलोचक नंददुलारे वाजपेयी के अनुसार– "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"[8] महादेवी वर्मा के अनुसार– "छायावाद न आध्यात्मिकता का 'छायाभास' है न आध्यात्मिक का छायाभान', न रहस्यवाद–स्वच्छन्दतावाद का पर्याय। मूलतः छायावाद भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं, नवजागरण की भाव–गतियों, प्रवाहों, प्रेरणाओं, साहित्यिक अभिप्रायों की लाक्षणिक प्रतीकात्मकता, वक्रोक्ति–व्यंजनाओं में सूक्ष्म अभिव्यक्ति है। इस सूक्ष्मता में 'अस्पष्टता' का आना स्वाभाविक है। कारण, छायावाद अंतमुर्खी कविता है – प्रगीत–कला की संपन्नता से युक्त कविता है और इसकी प्रेरणाएँ भारतीय है। पंत–प्रसाद–निराला पर पश्चिम के

स्वच्छन्दतावादी आंदोलन के प्रभाव का अर्थ नहीं है कि यह पश्चिमी स्वच्छन्दतावाद की 'नकल' से उपजी कविता है। अगर यह नकल होती तो इस कविता के प्रकृत स्वच्छन्दतावाद में वेद–उपनिषद, बुद्ध, रामायण, कालिदास, भवभूति के सृजन की 'कालिदामीय–लय' नदारद होती। स्वाधीनता आंदोलन और गाँधी की प्रेरणा का सर्जनात्मक तप और ताप न होता। इसमें कबीर–मीरा–तुलसी आदि संवाद करते नहीं मिलते।"[9] प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में जिस तरह क्रमशः विकास होता गया, इसकी काव्यात्मक अभिव्यक्ति भी विकसित होती गई और इसके फलस्वरूप 'छायावाद' संज्ञा का भी अर्थ विस्तार होता गया। 'छायावाद' नामकरण जिन कविताओं के आधार पर हुआ था, वैसी ही कविताएँ अगले वर्षों में भी नहीं होती रहीं, बल्कि उनकी विषयवस्तु तथा रूप–विन्यास का विस्तार हुआ। इसलिए छायावाद के आरंभिक अर्थ में भी क्रमशः व्यापकता का आना स्वाभाविक है।"[10] प्रगतिवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा छायावाद को पूँजीवादी सत्ता से जोड़ कर देखते हैं, उनके अनुसार– "हिन्दी का छायावादी साहित्य सामन्त–विरोधी औद्योगिक क्रांति के बाद का साहित्य नहीं है। वह साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनता के संघर्षकाल का साहित्य है। उसमें सबसे सशक्त स्वर देश की स्वाधीनता और जनतंत्र प्राप्त करने की आकांक्षा का स्वर है।"[11] सम्भवतः रीतिकालीन एवं द्विवेदीयुगीन सुधारवादी कविता के प्रतिक्रिया स्वरूप छायावादी कविता का जन्म हुआ। समाज जर्जर हो चुका था नये सिरे से उसका निर्माण करने के लिए छायावादी कवियों ने अपने काव्य में विद्रोह और क्रांति की ज्वाला फूँकी। डॉ. देवराज ने छायावाद में प्रेम और सौन्दर्य देखा। उनके अनुसार– "छायावादी काव्य मुख्यतः लौकिक प्रेम और सौन्दर्य का काव्य है।"[12] छायावाद के प्रतिवाद में मुक्तिबोध ने कहा कि– "छायावादी मनोदशा वास्तविक जीवन की प्रतिनिधित्व नहीं करती, वह जीवन जो जिया जाता है उसकी करुणा वास्तविक करुणा नहीं। छायावादी मनोभावों में रंगीनी इसीलिए है कि उसमें जिन्दगी, जैसी कि तैसी वह जी जाती है, की असलियत लापता है। यही है वह मूल प्रतिक्रिया है जो नयी कविता ने उन दिनों छायावाद के विरुद्ध की थी।"[13]

छायावाद के प्रवर्त्तक के रूप में मुकुटधर पाण्डेय का नाम लिया जाता है। इस नाम से उनकी प्रथम लेख–माला 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक के अन्तर्गत श्री शारदा मासिक पत्रिका जबलपुर से सन् 1920 में निकली और छायावाद का रहस्य बताते हुए उन्होंने कहा कि– "कुररी के प्रति' की कुछ पंक्तियों की रचना रात्रि में कुररी के करुण स्वर सुन बिस्तर पर पड़े–पड़े मैंने मन में ही कर डाली थी। बहुत दिनों के बाद जब कुछ लोग मेरी गणना 'छायावाद' के प्रवर्त्तकों में करने लगे और 'कुररी' को प्रतिनिधि कृति मानने लगे, तब मुझे आश्चर्य हुआ और मैंने अनुभव किया कि 'छायावाद' लिखा नहीं जाता लिख जाता है। सन् 1920 के लगभग जबलपुर की 'श्री शारदा' में मैंने

'छायावाद' पर एक लेख–माला लिखी थी। उसमें प्रसाद जी के 'झरना' का उल्लेख हुआ था। लेख लिखने के पूर्व मैंने हिन्दी के पुराने आचार्यो से उस समय की नयी कविता के नामकरण पर सम्मति मांगी थी। किसी ने भक्तिवाद और किसी ने आध्यात्मवाद सुझाया। बंगला में 'छायावाद' शब्द का चलन नहीं हुआ था। अतः यह शब्द बंगला से हिन्दी में नहीं आया। यह नाम सर्वथा मेरा गढ़ा हुआ है और मैंने परोक्ष सत्ता के प्रति अस्पष्ट रूप से व्यक्त भावों की रचना के लिए प्रयुक्त किया था।"[14] मुकुटधर पाण्डेय जहाँ छायावाद को आध्यात्मिकता में देखते हैं। वही पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी 'अन्योक्ति पद्धति' में। उनके अनुसार– "छायावाद से लोगों का क्या मतलब है, कुछ समझ में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किसी कविता के भावों की छाया यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावादी–कविता कहना चाहिए।"[15] जहाँ रामचन्द्र शुक्ल छायावाद को साहित्यिक प्रतिक्रिया मानते है। वहीं डॉ. नगेन्द्र इसे मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया मानते है। उनके अनुसार– "संक्षेप में जब–जब स्थूल की प्रभुता असहाय होती गई है, तभी सूक्ष्म ने उसके विरुद्ध क्रांति की है। इस क्रांति और इस विद्रोह के प्रोद्भास रूप से जो गान संसार की आत्मा ने उन्मत्त होकर गाये वे ही छायावाद की कविता के प्राण हैं। सारांश यह है कि स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। ..... छायावाद का जन्म ही विद्रोह में है–यह विद्रोह भावनाओं और विचारों में भी है और शैली एवं कला में भी।"[16] पाश्चात्य और रवीन्द्र के प्रभाव से अधिक विश्व युद्ध जैसी महान घटना का भी प्रभाव है। क्योंकि जब तक भौतिक जगत में कोई क्रांतिकारी अथवा विस्फोटक परिवर्तन न आ जाये तब तक मानसिक–जगत उद्वेलित नहीं होता। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि छायावादी काव्य की चेतना उद्बुद्ध करने में विश्वयुद्ध का प्रमुख हाथ है। इलाचन्द्र जोशी के अनुसार– "रवीन्द्र कविता की ओर हिन्दी वालों का ध्यान आकर्षित होने पर भी उसका प्रभाव हिन्दी की सामूहिक अन्तर्जगत की उतनी गहराई में प्रविष्ट न होता, यदि प्रथम महायुद्ध की विश्वव्यापी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हिन्दी जगत की भावात्मक तथा बौद्धिक चेतना सम्मिलित रूप से नये विस्फोटों के साथ उद्बुद्ध न हुई होती। महायुद्ध ने वह जमीन हिन्दी काव्य–जगत को दे दी जिसमें रवीन्द्र की भाव–धारा प्रविष्ट होकर सूखी नहीं, बल्कि उसे निरन्तर सजल और सरस बनाती हुई उससे नये–नये सुन्दरतर और विचित्र से विचित्रतर बीजों के प्रस्फुटन और विकास की शक्ति, सुविधाएँ और सम्भावनाएँ प्रदान करती चली गई।"[17]

छायावादी काव्य की प्रेरणा में भौतिक–परिवर्तन को प्रधान मानने वाले सिद्धान्तों में पहला सिद्धान्त विश्वयुद्ध और दूसरा सिद्धान्त आर्थिक या पूँजीवादी विचार का है। इस सिद्धान्त के अनुसार छायावाद की प्रेरणा के लिए भारतीय पूँजीवाद उत्तरदायी है। छायावादी काव्य उसी गति से विकसित हुआ है। जिस गति से भारत में पूँजीवाद का विकास हुआ है। पूँजीवादी वर्ग की चेतना छायावादी काव्य की प्रधान चेतना है। डॉ. शम्भूनाथ सिंह के अनुसार– "भारत का राष्ट्रीय जागरण भारतीय पूँजीवाद के विकास की राजनीतिक अभिव्यक्ति है। इसलिए जब हम आधुनिक हिन्दी कविता पर विचार करते हैं। तो उसमें राष्ट्रीय और पूँजीवादी मनोवृत्तियों की अभिव्यक्ति शुरू से अंत तक

पाते हैं।"[18]

संभवतः सामंतवाद और पूँजीवाद के मध्य से, मध्य वर्ग का उदय हुआ और व्यक्तिवाद का विकास हुआ। हिन्दी जगत् में छायावाद के रूप में व्यक्तिवादी भावनाएं ही अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुई। व्यक्तिवाद से ही वैयक्तिक की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में आधुनिक कवि ने जो निर्भीकता और साहस दिखलाया, वह पहले किसी कवि में नहीं मिलता है। छायावाद में प्रगीत (लीरिक) काव्य वैयक्तिकता का प्रतीक है। मध्ययुग के भक्तिवादी कवि और रीतिवादी कवि अपनी बातें निर्वैयक्तिक ढंग से कहते थे। इन लोगों में जो वैयक्तिकता दिखाई पड़ती है, वह केवल भगवान् के प्रति निवेदन है। अपने व्यक्तिगत जीवन के प्रति मौन रहते थे, काव्य में अपने प्रणय से संबंधित बात तो उस समय सोच भी नहीं सकते थे। इससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय व्यक्ति सामाजिक मर्यादाओं से कितना बँधा हुआ था।

सामंतवादी व्यवस्था के कारण समाज इतना बँधा हुआ था, कि आप के लिए सब कुछ निर्धारित था, आप कुछ नहीं सोच सकते। इसके विरोध के लिए प्रकृति का सहारा है। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "आधुनिक शिक्षा से प्रभावित युवक ने इस व्यक्ति रोध सामाजिकता का बहिष्कार करके पहले तो निर्जन प्रकृति में आश्रय लिया, जैसा कि पंत जी के वक्तव्यों से पता चलता है और फिर धीरे–धीरे शक्ति–संचय करके समाज में आकर उन रूढ़ियो के प्रति अपने वैयक्तिक विद्रोह का उद्घोष किया। पहले तो उसे पशु–पक्षियों की तरह प्राकृतिक जीवन में ही अपनी निजता, स्वतन्त्रता और आत्मभाव की संभावना दिखाई पड़ी, किन्तु बाद में जब कदम–कदम पर उसका संघर्ष सामाजिक रूढ़ियों से होने लगा तो उसने अपने व्यक्तित्व को उसके प्रतिरोध में खड़ा किया। 'आत्मकथा' उसका विषय हो गया और 'मैं' उसकी शैली।"[19] आत्मकथा शैली में व्यक्ति के आत्मा और अभिव्यक्ति का प्रसार होता है और मानवतावादी प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं तथा रूढ़ियाँ संकुचित होती है और परम्परा में एक नैरंतर्य परिवर्तन होता है। जिससे मनुष्य अपने को अधिक स्वतंत्र महसूस करता है। स्वयं की अनुभूति से विश्व की अनुभूति करता है और पूरे विश्व को अपना एक परिवार मानता है। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार "व्यक्तिवाद ने छायावादी कवि में यदि एक ओर वैयक्तिक अभिव्यक्ति की आकांक्षा उत्पन्न की तो दूसरी ओर सम्पूर्ण दृष्टिकोण को व्यक्तिनिष्ठ बना दिया। छायावादी कवि संसार को, सभी वस्तुओं को आत्मरंजित करके देखने का अभ्यास हो गया। विश्व की व्यथा से स्वयं व्यथित होने की जगह वह अपनी व्यथा से विश्व के व्यथित होने की कल्पना करने लगा। छायावाद के व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण को समझने के लिए उसके पूर्ववर्ती द्विवेदी–युग के विषयनिष्ठ अथवा तथ्यपरक काव्य को ध्यान में रखना आवश्यक है। द्विवेदी–युग का काव्य शुक्ल जी के शब्दों में जहाँ 'इतिवृतात्मक' था वहाँ छायावादी काव्य 'रागात्मक' हो उठा। निर्जीव तथ्यों के स्थान पर छायावादियों के चुने हुए रागात्मक तथ्यों को रागरंजित करके सत्य के रूप में उपस्थित

किया।''[20]

'सब भेद–भाव भुला कर दुःख–सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! यह मैं हूँ। यह विश्व नीड़ बन जाता।'[21]

छायावादी व्यक्तिवाद से प्रस्तुत प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई जिसमें वैयक्तिकता, सौन्दर्य, भावुकता और प्रेम प्रमुख हैं। सौन्दर्य मनुष्य में होता है, वस्तु में नहीं। समय के अनुसार सब कुछ सुन्दर है। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– ''प्रकृति अपने–आप में सुन्दर नहीं है, उसका सौन्दर्य मनुष्य के लिए है और मनुष्य युग–युग से प्रकृति को अपने तन–मन से सुन्दर बनाता आ रहा है। एक ओर मुनष्य के हाथों निसर्ग का नैसर्गिक सौन्दर्य और भी निखरता आया है। तो दूसरी ओर मनुष्य का मन उस वस्तुनिष्ठ सौन्दर्य के भी अनेक सूक्ष्म और अज्ञात स्तरों का उद्‌घाटन करता रहा है। छायावादी कवियों ने प्रकृति के छिपे हुए इतने सौन्दर्य स्तरों की खोज की, वह आधुनिक मानव के भौतिक और मानसिक विकास का सूचक है। इस सौन्दर्य–बोध का विकास प्रकृति और मानव के पारस्परिक सम्बन्धों का परिणाम उद्‌बुद्ध होकर प्रकृति में नवीन सौन्दर्य की खोज की और इस तरह दोनों परसार वर्धमान हुए।''[22]

छायावादी कवि स्वयं के अनुभव से दूसरे के अनुभव को महसूस करते थे, जिसके कारण भावुक होते थे। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– ''सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध यदि सामूहिक विद्रोह होता तो इतना असंतोष और निराशा का अनुभव न होता, किन्तु छायावादी कवि का विद्रोह वैयक्तिक था। इसलिए स्वभावतः उस एकाकी संघर्ष में उसे पद–पद पर पराजय और निराशा का अनुभव हुआ, दुःख उसका सहचर बन गया।''[23] छायावादी कवि वस्तु प्रेमी थे, सबसे प्रेम करते थे, इनके प्रेम में कहीं भी अश्लीलता (रोमांश) नहीं थी।

जब व्यक्ति सामंतवादी व्यवस्था का विरोध करने में असमर्थ हो जाता है तो वह शक्ति के लिए प्रकृति की गोद में जाता है। जिससे प्रकृति आलम्बन का कार्य करती है। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "सामाजिक स्वाधीनता और प्राकृतिक मुक्ति से छायावादी कवि को प्रकृति का जो नया परिचय प्राप्त हुआ, वह एकदम नूतन जीवन दृष्टि (विजन) के समान मालूम हुआ। छायवादी कवि को ऐसा लगा कि यह आलोक स्वयं प्रकृति से ही आ रहा है।"[24]

हृदय के प्रणय कुंज में लीन

मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तक मन बंधन हीन
मधुरता से अपनी अनजान;
खिल उठी रोओं की तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल।'[25]

कल्पना एकांत जगह में की जाती है। इसलिए कवि प्रकृति की गोद में या निर्जन जगह में जाते हैं। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "कल्पना ही उनकी वह शक्ति है जिसके द्वारा वे अपने बन्धनों की सीमा में रहते हुए भी उन्मुक्त आकाश में विचरण करने का सुख लेते थे। कल्पना छायावादी कवि के मन की पाँख थीं, वह उसकी स्वतंत्रता, मुक्ति, विद्रोह, आनंद आदि की आकांक्षाओं का प्रतीक थी।"[26] कल्पना ही छायावाद में ईश्वर (शक्ति) है।

जिसकी कोई सीमा नहीं है। कोई बंधन नहीं है। प्रो. नामवर के अनुसार– "जिस प्रकार वर्तमान से असंतुष्ट मन अतीत की ओर भागता है, उसी तरह इस जगत् से असंतुष्ट होकर किसी अन्य जगत की खोज में निकल पड़ता है और न मिलने पर कल्पना के द्वारा एक सुखद लोक की सृष्टि कर डालता है। छायावाद–युग में 'उस पार' और 'क्षितिज के उस पार' जैसी बातें जो अक्सर सुनाई पड़ती थी। वे इसी भावना की अभिव्यक्ति थी। 'परिमल' में निराला जी लिखते हैं –

हमें जाना है जग के पार–
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव–रस–धार–
वहीं जाना, इस जग के पार।"

'उस पार' में एक रहस्य अर्थात जिज्ञासा की भावना है कि उस पार क्या है? प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "कल्पना छायावादी कविता की मौलिक विशेषता है। इसी ने कवि को रहस्यदर्शी बनाया; असीम और अनंत की सार्वभौम अनुभूति दी; अतिपरिचित वस्तुओं में भी अपरिचित सौन्दर्योद्घाटन की अन्तर्दृष्टि दी तथा विरूप वस्तुओं को भी रूपमय बनाने की क्षमता प्रदान की, इसी ने कवि में नवीन ऐन्द्रिय–बोध जगाये और अभूतपूर्व संवेदनशीलता उभरी।"[28]

छायावाद में नारी को स्वतंत्र कराने का विशेष स्थान है। जहाँ द्विवेदी युग में नारी को आश्रय मिला लेकिन पूर्ण रूप से नहीं। छायावाद में पूर्णरूप से स्वतंत्रता मिली। प्रो. नामवर सिहं के अनुसार– "द्विवेदी–युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव तो है, पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं हैः उस युग में निःसंदेह विधवाओं को लेकर अनेक कविताएं लिखी गई, लेकिन उन कविताओं में विधवा को खाना–कपड़ा दिलाने का ही आग्रह अधिक है, और इसीलिए विधवा–विवाह को आवश्यक ठहराया गया है। द्विवेदी–युग का यह काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है, जिससे नारी को आश्रय देने के साथ ही वंदिनी भी बना दिया गया और इस तरह वह अपने सहज जीवन से विच्छिन्न कर दी गई।"[29] उन्हीं के अनुसार– "तिरस्कृता विधवा को इष्टदेव के मंदिर के पूजा–सी पवित्र कहना, भोग्या नारी के 'संग में पावन गंगा–स्नान' की कल्पना करना और उसे 'देवी, माँ, सहचरि, प्राण' कहकर पुकार उठना आदि बातें आधुनिक कवि के नारी आदर्श की सूचक हैं। छायावादी कवि ने नारी को अपमान के पंक और वासना के पर्यंक से उठाकर देवी और सहचरी के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया। नैतिकता की पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर उसने मानव–विवेक पर आधारित प्रेम सम्बंधी नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की; सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म–संस्कार का बीजारोपण किया, मध्यवर्ग को व्यावसायिक प्रयोजनशीलता तथा अत्यन्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण से मुक्त कर आदर्शवाद के उच्च आकाश में विचरण करने की प्रेरणा दी।"[30]

"नारी ! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत नग पगतल में;
पीयूष–स्रोत–सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।"[31]

सामंतवाद और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ राष्ट्रीयता की भावना पैदा हुई। राष्ट्रीयता कैसे उत्पंन्न होती है ? प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय पुनरूत्थान–भावना से होता है। इसकी वजह है, विजेता जाति प्रायः विजित जाति को दबाने के लिए उसमें से सभी प्रकार की शक्तियों का अपहरण करने का प्रयत्न करती हैं।"[32] हमारे राष्ट्रीय आंदोलन के दो मोर्चे थे। एक मोर्चा प्राचीन सामंती मर्यादाओं के विरुद्ध था और दूसरा अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध। छायावाद का व्यक्ति–स्वातंत्र्य सामंती मर्यादाओं के विरुद्ध बहुत बड़ा कदम था।"[33] निराला के 'पंचवटी–प्रसंग' में राम–सीता आधुनिक युवक–युवती का प्रतीक हैं।

छोटे–से घर की लघु सीमा में
बँधे हैं क्षुद्र भाव,
यह सच है प्रिय,
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर।[34]

छायावाद में अंग्रेजों का विरोध नहीं किया गया, उनके साम्राज्यवाद की कूटनीति का विरोध किया गया, भारतीय जनता उदारवादी थी। कहा जाता है कि 'पाप से घृणा करो पापी से नहीं'। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "जहाँ तक साम्राज्य विरोधी मोर्चे का सवाल है, इस पर छायावादियों ने स्पष्ट रूप से अंग्रेजों का विरोध तो नहीं किया लेकिन परोक्ष रूप से साम्राज्यवाद के विरुद्ध देश–प्रेम, जागरण तथा आत्मगौरव का गान गाया।"[35] भारत–भूमि की प्रशंसा में प्रसाद द्वारा गाया हुआ यह गीत –

अरूण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा
सरस तामरस गर्भ विभा पर–नाच रही तरू शिखा मनोहर
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।[36]

इसमें देश–प्रेम की भावना व्यंजित होती है। प्रसाद का एक जागरण–गीत है।

हिमाद्रि तुंग–शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती–
स्वयम्प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती।[37]

द्विवेदी युग में खड़ी बोली का प्रारम्भिक रूप मिलता है, लेकिन छायावाद में खड़ी बोली का परिनिष्ठ रूप दिखायी देता है। भावनात्मक होने के कारण वाक्य में अन्विति की गड़बडी हो जाती है। प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "भावोच्छ्वास की प्रधानता के कारण छायावादी वाक्य–प्रवाह में शब्दों का क्रम प्रायः गड़बड़ा गया। प्रसाद की भाषा में इस तरह के दूरान्वय वाले वाक्य बहुत मिलते हैं। इसके अतिरिक्त, भाषा को कोमल बनाने के लिए प्रायः सभी छायावादी कवियों ने 'है', 'था' आदि सहायक क्रियाओं का बहिष्कार किया।

इस पर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए 'पल्लव' की भूमिका में पन्त जी लिखते हैं– ''खड़ी बोली की कविता में क्रियाओं और विशेषतः संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग कुशलता पूर्वक करना चाहिए, नहीं तो कविता का स्वर (एक्सप्रेशन) शिथिल पड़ जाता है, और खड़ी बोली की कविता में यह दोष सबसे अधिक भाषा में विराजमान है। 'है' को तो, जहाँ तक हो सके निकाल देना चाहिए, इसका प्रयोग प्रायः व्यर्थ ही होता है।"[38] ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है।

छायावाद की एक प्रमुख विशेषता उसका चित्रात्मक होना। यह नाम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी का दिया हुआ है। उनके अनुसार– "चित्र भाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अन्तर्गत जिस प्रकार वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पदों का व्यवहार आता है उसी प्रकार प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाले अप्रस्तुत चित्रों का विधान भी।"[39] चित्रात्मक शैली के साथ ही छायावाद में एक प्रमुख अलंकार मानवीकरण का प्रयोग किया गया है। जो मानव नहीं है उसमें मानव–सुलभ गुणों के आरोप करने की प्रक्रिया को मानवीकरण कहते है। परिस्थिति के सन्दर्भ में व्यक्ति, विविध प्रकार की भावानुभूति करता है। भावावेश में वह प्रकृति पर भी मानवीय भावनाओं का आरोप करता है।

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या–सुन्दरी परी–सी
धीरे–धीरे–धीरे,
तिमिराचंल में चचंलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर–मधुर है दोनों उसके अधर,
किन्तु गम्भीर–नहीं है उनमें हास–विलास।"[40]

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति मुक्त छंद है। मुक्त छंद में एक स्वतंत्रता का आभास होता है। निराला के अनुसार– "मनुष्यों के मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मो के बन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिए होते हैं–फिर भी स्वतंत्र, इसी तरह कविता का भी हाल है। मुक्त काल कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत् उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है।''[41] प्रो. नामवर सिंह के अनुसार– "अर्थ की दृष्टि से मुक्त–छंद शब्द के भीतर स्वतोत्याघात है। छंद का अर्थ ही है बंधन; फिर 'मुक्त–बंधन' का क्या अर्थ है? यदि उसमें बंधन है तो फिर वह मुक्त कैसे है? इसीलिए कुछ लोगों ने इसका अर्थ लिया है, छंद से मुक्ति। उनके अनुसार मुक्त छंद वह है जिसमें कोई छंद ही न हो। लेकिन इस तरह की बातें वही करते हैं जिनका संगीत–बोध कुंठित होता है। वस्तुतः मुक्त छंद की कविता पढ़ने से किसी न किसी लय का बोध तो होता ही है।

इससे यह पता चलता है कि मुक्त छंद में लय तो है परन्तु उसमें तुक नहीं है और उसके सभी चरण सम नहीं है। इसका अर्थ यह है कि मुक्त–छंद में छंद के वाह्य आडंबर तो नहीं हैं, परन्तु उसकी आत्मा 'लय' अवश्य है। इस तरह 'मुक्त–छंद', छंद के वाह्याडंबर से तो मुक्त होता है परन्तु उसकी लय बँधी रहती है। छंद के वाह्यडंबर से मुक्त वह होता ही इसलिए है कि छंद की आत्मा में अधिक से अधिक विकास कर सके। अस्तु, मुक्त–छंद शब्द विरोधाभास है, वास्तविक अंतर्विरोध नहीं।"[42] मुक्त छंद के प्रवर्तक निराला जी है। मुक्त छंद की पहली कविता 'जूही की कली' है। जिसमें छंद की रूढ़ियों से मुक्ति और आत्म प्रसार की भावना है।

विजन–वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग–भरी, स्नेह–स्वप्न–मग्न,
अमल–कोमल–तनु तरूणी, जूही की कली
दृग बन्द किये, शिथिल–पत्रांक में,
वासन्ती निशा थी,
विरह–विधुर–प्रिया–संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।[43]

अतः द्विवेदीयुगीन स्वच्छन्दतावाद पर पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद का प्रभाव है। जबकि छायावाद भारतीय सांस्कृतिक नवजागरण का स्वर है, उसमें व्यक्त विद्रोह की भावना सर्जनात्मक है, संतुलित है, भारतीय संस्कृति के तत्त्वों से अनुप्राणित है। द्विवेदीयुगीन स्वच्छन्दतावाद में सामंतीशाही, साम्राज्यवादी जीवन दृष्टि के विरुद्ध विद्रोह था। छायावाद भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक और साहित्यिक बन्धनों से मुक्ति चाहने वाला और उन बन्धनों से मुक्त काव्य है।

सन्दर्भ

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, द्वितीय संस्करण संवत् 2059, पृ.सं. 351
2. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नवीन संस्करण 1995, पृ.सं.43
3. आ. रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, उन्नीसवां संस्करण 2006, पृ.सं. 94
4. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, द्वितीय संस्करण संवत् 2059, पृ.सं. 353
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, द्वितीय संस्करण संवत् 2059, पृ.सं. 362
6. हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्यःउद्भव और विकास, पाँचवी आवृत्ति : 2003, पृ.सं. 243
7. जयशंकर प्रसाद : काव्य और कला तथा अन्य निबंध, द्वितीय संस्करण 2007, पृ.सं. 78–79
8. नंददुलारे वाजपेयी : हिन्दी साहित्यः बीसवीं शताब्दी, संस्करण 2002, पृ.सं. 138
9. संपादक प्रवीण उपाध्याय : आजकल, मार्च 2007, पृ.सं. 12–13
10. प्रो. नामवर सिंह : छायावाद, छठवीं आवृत्ति, 2004, पृ.सं. 17
11. डॉ. रामविलास शर्मा : परम्परा का मूल्यांकन, संस्करण 2004, पृ.सं. 175–176

12. डॉ. देवराज : छायावाद का पतन, प्रथम संस्करण, 1848, पृ.सं. 119
13. संपादक डॉ. निर्मला जैन : निबन्धों की दुनिया, मुक्तिबोध, प्रथम संस्करण 2007, पृ.सं. 103
14. संपादक बालकृष्ण राव : माध्यमा, वर्ष, अंक–2, जून 1964, पृ.सं. 15
15. संपादक, प्रो. रामकुवर राय : 'उपलब्धि' अंक–3, वर्ष 2006, पृ.सं. 16
16. प्रो. नगेन्द्र : सुमित्रानंदन पंत, षष्ठम संस्करण, पृ.सं. 9 (साहित्यभण्डार आगरा)
17. छायावाद का आरम्भ कब हुआ? (एक परिसंवाद), अबंतिका, जनवरी 1954, पृ.सं. 193
18. डॉ. शम्भूनाथ सिंह : छायावाद युग, प्रथम सं. 1952, पृ.सं. 52, सराचली मंदिर, वाराणसी।
19. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, नवीन संस्करण 1995, पृ.सं. 19–20
20. प्रो. नामवर सिंह " " पृ.सं. 22
21. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, प्रथम संस्करण 1999 ई., पृ.सं. 126
22. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, 1995, पृ.सं. 23–24
23. " " " पृ.सं. 24
24. प्रो. नामवर सिंह : छायावाद पृ.सं. 38
25. पंत : पल्लव, नौवा संस्करण 1993, पृ.सं. 51
26. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ 1995, पृ.सं. 51
27. निराला : परिमल , तीसरी आवृत्ति 2002, पृ.सं. 81
28. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ 1995, पृ.सं. 32
29. प्रो. नामवर सिंह : छायावाद, पृ.सं. 47
30. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ 1995, पृ.सं. 40
31. जयशंकर प्रसाद : कामायनी, 1999 ई., पृ.सं. 46
32. प्रो. नामवर सिंह : छायावाद, छठी आवृत्ति, 2004, पृ.सं. 72
33. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ.सं. 39
34. निराला : परिमल, तीसरी आवृत्ति 2002, पृ.सं. 184
35. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ.सं. 40
36. प्रसाद : चन्द्रगुप्त, संस्करण 2000, पृ.सं. 83
37. " " " पृ.सं. 163
38. प्रो. नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ.सं. 36
39. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, संस्करण संवत् 2059, पृ.सं. 362
40. निराला : परिमल, तीसरी आवृत्ति 2002, पृ.सं. 104
41. निराला : परिमल , तीसरी आवृत्ति 2002, पृ.सं. 8
42. प्रो. नामवर सिंह : छायावाद, छठी आवृत्ति, 2004, पृ.सं. 130–31
43. निराला : परिमल, तीसरी आवृत्ति 2002, पृ.सं. 143